Chapter-6

षष्ठ अध्याय

लाल की नाट्य-यात्रा का रंग-अवधारणा के स्तर पर समग्र आकलन

'अन्धा कुआ' से लेकर अद्यतन रचे गये नाटकों में लाल का एक सम्पूर्ण नाट्य-व्यक्तित्व दिखायी देता है। इस नाट्य व्यक्तित्व के समग्र आकलन के विविध आयाम हैं। इनमें से रचनाकार की चिन्तन प्रक्रिया का जो क्रमिक विकास उनके नाटकों में देखने को मिलता है, वह इस समग्र आकलन का एक विशिष्ट बिन्दु है और इस प्रकरू पर एक दृष्टि देकर वैचारिक स्तर पर नाटककार की सामाजिक, राजनीतिक और वैयक्तिक चेतना के क्रमिक विकास को समीक्ष्य कियाजाना समीचीन होगा।

सामाजिक चेतना के विकास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है समाज में नारी और पुरुष के मध्य का सम्बंध। इस पारस्परिक सम्बंध की प्रकृति लाल के नाटकों में युग सन्दर्भों के साथ बदलती गयी है। इसीलिये नारी-पुरुष के मध्य सम्बंधों का जो स्वरूप 'अन्धा कुआ' में अभिव्यक्त हुआ है, वह अपनी प्रकृति में 'सगुन पंछी' से आमूल भिन्न है। 'अन्धा कुआ' में भगौती और सूका का परस्पर सम्बंध नारी चेतना की सुन्भि सुषुप्ति और इसका अनुचित लाभ उठानेवाली पुरुष की मनोवृत्ति का द्योतक है। इसके मूल में लाल द्वारा नारी के सामाजिक पुनरुत्थान की आवश्यकता पर के सम्बन्ध में अपने पाठकों व दर्शकों मेंे में एक द्वन्द्वपरक चिन्तना को उत्पन्न करने की दृष्टि रही है। सूका और भगौती का सम्बंध इसी द्वन्द्वात्मक स्थिति को पेस प्रेक्षकों में उत्पन्न करता है। इसके परिणाम स्वरूप 'मादा कैक्टस' के सुजाता नामक चरित्र का जन्म होता है- ऐसा चरित्र जिसमें पुरुष जाति के अहं का मुंहतोड जवाब है। 'मादा कैक्टस' में भगौती का परिष्कृत रूप है अरविन्द और सूका का स्थान लेने वाली है मीनाक्षी। मीनाक्षी को भारतीय नारी की सामाजिक चेतना की अपेक्षाकृत विकासशील अवस्था के रूप में देखा जा सकता है। सूका का मौन समर्पण मीनाक्षी में अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति का कारण बन जाता है - ऐसा अन्तर्द्वन्द्व जोअरविन्द द्वारा उसके नारीत्व की उपेक्षा किये जाने के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है। 'मादा कैक्टस' की मीनाक्षी और सुजाता भारतीय नारी द्वारा अहंग्रस्त पुरुष समाज को दी जाने वाली चुनौती का प्रारम्भ कहा

जा सकता है। नारी जागरण में लाल के नारी पात्रों के योगदानकी आगामी सीढ़ी है। 'रातरानी' की और 'दर्पन' की पूर्वी बनाम दर्पन। कुन्तल नारी-जागरण की दृष्टि से कोई नया प्रतिमान स्थापित करने की दिशा में सक्षम नहीं रही है। एक प्रकार से सर्वस्व समर्पण की सीमा पर पहुंचकर पुरुष समाज का हृदय जीत लेने की रोमांटिक प्रवृत्ति वहां देखने को मिलती है। 'दर्पन' की पूर्वी अपने जीवन का स्वामी स्वयं बनने बने की 'इहा' लेकर सम्पूर्ण समाज के विरुद्ध द्वन्द्व करती है और अन्तत: उसी समाज द्वारा छली जाती है। विडम्बना यह है कि यहाँ पूर्वी के समाज के विरुद्ध रूने हुए संघर्ष में उसका प्रेमी हरिपद्म सहायक है किन्तु वह स्वयं में समाज के विरुद्ध खड़े होने का मनोबल नहीं जुटा पाता। मगौती व अरविन्द का सा अहं न होने और नारी के प्रति सहानुभूति पूर्ण व्यवहार होने के उपरान्त नारी-उत्थान के लिये वह ठोस कदम नहीं उठा पाता। हरिपद्म के मन कमजोर मनोबल को पूर्वी ने भी समझ लिया है जिसके कारण उसे निस्सहाय होकर समाज के समक्ष घुटने टेकने पड़ते हैं। 'दर्पन' के माध्यम से नाटककार नारी की अवस्था के सम्बन्ध में सामाजिक-यथार्थ को प्रकट करता है।

नारी और पुरुष के पारस्परिक सम्बंधों को उनके आदिम रूप 'मैं' और 'वह' के रूप में देखने का प्रयास है 'व्यक्तिगत' में। सही अर्थों में 'मादा कैक्टस' के बाद नारी द्वारा पुरुष के शोषण के विरुद्ध प्रतिकार की अभिव्यक्ति इस नाटक में हुई है।सामाजिक चेतना के विकास में नारी की यह अभिव्यक्ति पुरुष द्वारा शोषित होने के उपरान्त होती है और यही लाल के नाटकों में नारी-मुक्ति का एक सशक्त प्रसंग माना जा सकता है। 'मैं' के अहं की एक-एक परतों को खोलकर उघेड़कर रखने में 'वह' की सफलता युग सन्दर्भों में नारी-मुक्ति आन्दोलन के औचित्य को सिद्ध करने का ही प्रतिफल है। यह सम्बंध 'करफ्यू' में वर्जनाओं को तोड़कर नारी-पुरुष के आदिम स्वरूप को स्थापित मर्यादाओं की तुलना में महत्ता देने का प्रयत्न करता है। 'अन्धा कुआं' से 'करफ्यू' जैसे मुक्त सम्बंधों के सामाजिक औचित्य स्थापित करने वाले नाटक तक की यात्रा नारी-पुरुष के सम्बंधों को लेकर

नाटककार की हनुमान-छलांग का परिणाम है। इसीलिये यह नाटक लाल के चिंतन प्रक्रिया में मलमल में 'तार के पैबन्द' के समान प्रतीत होने लगता है। 'करफ्यू' की जीवन दृष्टि तब अधिक पक्ष अप्रासंगिक लगने लगती है जब वे लीला-नाटकों में नारी के ठेठ लोक रंगों के साथ प्रस्तुत करते हैं। 'गंगामाटी' की गंगा और 'सगुन पंछी' की गंगा ऐसे ही नारी पात्र हैं। ये लोक जीवन से उठाये गये चरित्र हैं और भारतीय नारी के जीवन के यथार्थ और उसमें निहित अपरिमित सम्भावनाओं को उजागर करने वाले हैं। ये ऐसे नारी चरित्र हैं जो पुरुष को केवल चुनौती नहीं देते हैं प्रत्युत उसके शुभ मार्ग का सन्धान करने में अहम् भूमिका का निर्वाह करते हैं। परम्परा के निर्वाह के साथ-साथ परिवर्तन पूर्ण दृष्टि -यही वह बिन्दु है जो भारतीय नारी की सामाजिक चेतना को सही दिशा दर्शन देता है। नारी और पुरुष के सम्बंध का 'सगुन' यही है कि पुरुष और नारी अपने -अपने एकान्त अहं को विस्मृत कर एक दूसरे की महत्ता को स्वीकार कर आगे बढ़ें- भारतीय समाज में नारी-पुरुष का यही पारस्परिक सौहार्द लाल के नाटकों में का प्रतिपाद्य रहा है।

नारी और पुरुष के मध्य सम्बंधों की विकास यात्रा में विरोध के मध्य एक दूसरे से प्रेम का साक्षात्कार करने का भी एक सातत्य देखने को मिलता है। 'अन्धा कुआं' में सूका भगौती से विद्रोह करने के उपरान्त उससे प्रेम करती है, परिणामतः स्व नाटक के अन्त में आत्म-बलि देकर उसे इन्दर से बचाती है, 'मादा कैक्टस' में मीनाक्षी अरविन्द से प्राप्त अपने नारीत्व की उपेक्षा के उपरांत उसे प्लेटोनिक-प्रेम करती है, 'रातरानी' में कुन्तल जयदेव की अर्थजीवी मनोवृत्ति से विरोध रखने के उपरान्त उसे अपना सच्चा प्रेम प्रदान करती है, 'सूर्यमुख' में प्रद्युम्न और वेनुरती परस्पर संशय से गुजरकर प्रेम का आत्म-साक्षात्कार करते हैं और 'सगुन पंछी' में पंचम और गंगा परस्पर संघर्ष के उपरान्त एक दूसरे से 'जीवन नदिया की धारा' के समान प्रेम करते हैं। इस प्रकार विरुद्ध धर्माश्रय के रूप में लाल के नाटकों में जीवन की भव्य ईहा (volition) को प्राप्त करने की अदम्य इच्छा ह के दर्शन होते हैं।

नाटकों में रचनाकार की चेतना के सतत विकास का दूसरा पक्ष है राजनीति। राजनीति आज के सभी समाजिक क्रिया कलापों के मूल में प्रमुख विषय बनकर गुंथी हुई है। अतएव उससे असम्पृक्त होना न तो प्रबुद्ध रचनाकार के लिये सम्भव है और न ही उससे बचकर निकल जाना उसकी विजय है। प्रश्न यह है कि राजनीति से सम्पृक्त होने पर भी कोई उससे कितना प्रतिबद्ध होता है? प्रतिबद्धता रचनाकार के लिये एक शोचनीय दशा है क्योंकि तब वह रचनाकार न रहकर भाट या चारण बन जाता है। लेकिन जो रचनाकार राजनीति को अपनी रचना के कार्य-व्यापार का माध्यम बनाकर उसमें से मूल्यों की खोज करता है वह अपने रचनात्मक दायित्व का निर्वाह करता है। लाल के नाटकों में समसामयिक राजनीति को यथार्थ रूप में उभारने का प्रयत्न किया जाता रहा है और इन्हीं में से मूल्यों की प्रतिष्ठा की जाती रही है। मूल्यों की इस प्रतिष्ठा को ही एक स्थान पर समवेत किया गया है उनके ग्रन्थ 'निर्मूल वृक्ष का फल' में। इस ग्रन्थ का सर्जन एक लम्बे अनुभव का परिणाम है और इसका प्रतिपाद्य ही उनके नाटकों में यत्र-तत्र बिखरा पड़ा है। 'सूखा सरोवर' इस राजनीतिक जीवन के प्रति लाल की दृष्टि की प्रथम अभिव्यक्ति कहा जा सकता है। जीवन के सरोवर को सुखा डालने का षड्यंत्र करने वाला छोटा राजा स्वार्थमय राजनीति का सम्पूर्ण प्रतीक सामने लाकर खड़ा कर देता है। सरोवर में पानी का लौट आना राजनीतिक जीवन में मूल्यों की पुर्नप्रतिष्ठा की मंगलमय कामना का प्रतीक है। 'कभी सूखने न देंगे। जो जीवन मिला है। अब कभी डूबने न देंगे' - कहकर नाटककार ने धर्म, राजनीति और समाज को प्रेम द्वारा बांधने के गांधी दर्शन की पुष्टि की है। यही राजनीति 'रक्त कमल' के चरित्र कमल और आस्त्य द्वारा एक नवीन सन्दर्भ प्राप्त करती है। वहां कमल राष्ट्र की यथार्थ स्थिति के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने वाला उद्घोषक है जो इस देश में असमानता के धरातल पर खड़ी राजनीति की विसंगतियों का दर्शन कराती है। ये विसंगतियां उसके स्वर में इतना आक्रोश भर देती है कि कहीं-कहीं कमल के उद्गार किसी प्रतिबद्ध राजनीतिक विचारधारा का पोषण करते प्रतीत होने लगते हैं। लेकिन अन्त: आस्त्य पीढ़ी के अभ्युदय का आह्वान इस नाटक को भारतीय परिस्थितियों में प्रासंगिक बना देता है। 'सूखा सरोवर' और 'रक्त कमल'

दोनों में राजनीतिक चेतना का विकास प्रेम और राष्ट्रीयता के मूल्यों से सम्बद्ध होकर आगे बढ़ता है। शनैः शनैः लाल के नाटकों में देश के राजनीतिक चरित्र के प्रति एक प्रकार के बौद्धिक आक्रोश के दर्शन होते हैं और राजनीतिक तंत्र की मूल्य-विहीनता को वे संपूर्णसमाज में व्याप्त होते जाने की स्थिति को लक्ष्य करते हैं। 'सूर्यमुख' में महाभारतोत्तर परिस्थितियों के सन्दर्भ में इस राजनीतिक विप्लव और सत्ता लोलुपता को लक्ष्य किया जा सकता है। सत्ता में व्यक्तिवाद की अतिवादिता से उत्पन्न प्रजातंत्रीय मूल्यों के संकट को 'कलंकी' में देखा जा सकता है। इस मूल्य-विहीनता राजनीति के दूरगामी परिणाम मानवीय मूल्यों के विश्रृंखल होते जाने के रूप में होते हैं। इसे 'सूर्यमुख' के जरा एवं 'कलंकी' के तांत्रिक और अवधूत के चरित्रों में देखा जा सकता है। रचनाकार की अनुभव जन्य दृष्टि से राजनीतिक मूल्यविहीनता के विकेन्द्रित सामाजिक व्यवस्था पर पड़े प्रभावों को भी लक्ष्य किया है। इसके रहते इस समाज का प्रत्येक व्यक्ति इस मूल्यविहीन व्यवस्था के व्यूह में रह जाने को अभिशप्त हो जाता है। 'मिस्टर अभिमन्यु' का कलक्टर राजन प्रतिबद्ध राजनीतिक व्यवस्था का ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत करता है। गयादत्त, केजरीवाल और राजन के पिता भ्रष्ट उसी व्यवस्था के पोषक हैं। राजनीति के भ्रष्ट स्वरूप को लक्ष्य करने के बाद नाटककार का रचनात्मक दायित्व 'अब्दुल्ला दीवाना' की रचना में दृष्टि-गोचर होता है। राजनीति में नैतिक मूल्यों की अनिवार्यता का प्रश्न वह बिन्दु है जहाँ से लाल की नाट्य-यात्रा में राजनीतिक चेतना के विकास की दृष्टि से एक संक्रमण उत्पन्न होता है। इस संक्रमण के कारण लाल के आगामी नाटक जैसे सचेत होकर देश की सम-सामयिक राजनीति में 'अब्दुल्ला' की खोज करना प्रारम्भ कर देते हैं - कहीं यह 'अब्दुल्ला' उन्हें चाणक्य के रूप में भुक्तभोगी बनकर 'कोमल पैरों में कुश गड़ा' तथा 'नन्द की श्राद्धशाला में घोर अपमान भोगने' के परिणाम स्वरूप दिखायी देता है, कहीं लोंका के रूप में सत्य की परीक्षा देते और लेते दिखायी देता है, कहीं सम्य-यक्ष द्वारा शक्ति को बाँटने वाले पाण्डवों से प्रश्न पूछते दिखायी

देता है, कहीं पंचों के रूप में ठाकुर सिंघु सिंह जैसे अनेक भ्रष्ट धार्मिक और राजनितिज्ञों के अस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह, लगाता दिखायी देता है और कहीं रामगुलाम जैसे 'गुलामों के गुलामों' में आत्मबल और स्वयं के जीवित सत्ता होने का गौरव भरता दिखायी देता है। यहाँ आकर लाल के नाटकोंकी राजनीतिक चेतना मूल्यों से जुड़कर राजनीति में 'नरसिंह' जैसे चरित्र का प्रणयन करती दृष्टिगोचर होती है।

लाल के नाट्य-साहित्य की तीन दशकों की यात्रा में विचार-तत्व के स्तर से यदि एक क्रमिक दृष्टि देखने को मिलती है तो शिल्प के स्तर पर भी निरन्तर एक प्रयोगशील दृष्टि देखने में आती है। यह एक कटु सत्य है कि अपनी प्रयोगशील प्रवृत्ति के कारण लाल कहीं-कहीं शिल्प के धरातल पर 'टाइप' बन गये प्रतीत होते हैं। लोक-जीवन से गृहण की गयी रंग-धर्मिताओं या रूढ़ियों का एक ही रूप उनके अनेक नाटकों में एक जैसा म मिलता है। 'भोगने', 'देखने' और 'वर्तमान' में जीने की बात करने वाले उनके लीला चरित्र भी जैसे अलग अलग नाटक में अलग-अलग मुखौटा धारण करप्रकट होने लगते हैं - जबकि उनकी कथन शैली एक की ही प्रकार की और एक ही विचार को बहन करने वाली होती है। प्रयोग की यह प्रवृत्ति लीला नाटकों विशेषकर -'गंगामाटी', 'पंच-पुरुष' और 'रामकी लड़ाई' में एक ही रचना-शिल्प को बार-बार किंचित परिवर्तन के साथ रख देने जैसा प्रतीत होती है। दूसरी ओर, शिल्प के स्तर पर कतिपय दृष्टियों से एक क्रमिक विकास भी देखने को मिलता है। यही वह सातत्य है जो उनकी नाट्य-रचनाओं को 'यात्रा' के-स्वरूप का स्वरूप देता है।

लाल के नाटकों में प्रारंभ में ही एक केन्द्रीय समस्या को उठाया जाता है। लेकिन परम्परागत रूप में, अन्त में उसका समाधान नहीं किया जाता प्रत्युत दर्शकों के लिये वह चिरन्तन प्रश्न की सम्भावनाएं उत्पन्न कर एक अन्तहीन नाटक का रूप ले लेता है। अन्तहीन चिन्तन की सम्भावनाएं छोड़ने वाले उनके नाटकों मेंक में उठाये प्रश्नों की प्रकृति में ही वह शाश्वत बोध होता है जिसके कारण उस समस्या का

एकांतिक समाधान समीचीन ही प्रतीत नहीं होता । दूसरे शब्दों में लाल के नाटक 'शाश्वत प्रश्नों के अन्तहीन समाधान वाले नाटक ' हैं और अपने अंत में भी दर्शकों के लिये वैचारिक ऊष्मा की सामग्री छोड़ने वाले हैं। इस प्रकार नाटक का अन्त बंधा-बंधा न होकर मुक्त -चिन्तन को गति देने वाला हो जाता है । 'मादा कैक्टस' में नारी-पुरुष के पारस्परिक सम्बंधों और पुरुष के अहं द्वारा नारी के दलन का प्रश्न नाटक के अंत में सुधीर की 'बन्द मुठ्ठी के रहस्य' के रूप में दर्शकों के लिये वैचारिक चिन्तन की सामग्री देता है, 'दर्पन' में पूर्वी द्वारा 'अपने जीवन का स्वामी स्वयं' होने की समस्या को उठाया गया है लेकिन अन्तत: पूर्वी का समाज से हार स्वीकार कर पुन: भिक्षुणी के रूप म को स्वीकार कर लेना नाटक में 'अनुत्तरित प्रश्न' बनकर दर्शकों को वैचारिक धरातल के क्षेत्र प्रदान करना है। 'मिस्टर अभिमन्यु' (और उसी तर्ज में 'राम की लड़ाई') राजन और रामगुलाम के 'द्वि युद्ध' को समक्ष रखने का कार्य करता है किन्तु उस युद्ध के परिणाम स्वरूप क्या समाज द्वारा बनाये यथास्थितिवाद के चक्रव्यूह को तोड़ा जा सकता है- यह प्रश्न दर्शकों के मनोमंथन के लिये शेष रह जाता है। 'कल्की' में यथास्थितिवाद के घेरे को तोड़ने में असफल स्वरूप स्थिति की भयावहता को अन्तत: समक्ष रख देता है। 'अब्दुल्ला दीवाना' में 'अब्दुल्ला' की हत्या का मुकदमा हत्यारे को खोजने में असफल रहता है क्योंकि यह प्रश्न ही एब्स्ट्रेक्ट है। 'नरसिंह कथा' हिरण्यकशिपु का नरसिंह द्वारा वध मार्ग की एक खोज मात्र है, यह खोज नाटक की उपादेयता को भविष्य तक प्रसार प्रदान करता है। 'एक सत्य हरिश्चन्द्र' में लौका का यह कथन कि अब इन्द्र को भी अपने सत्य की परीक्षा देनी होगी- नाटक में निहित 'क्रान्ति के प्रारंभ' की ओर संकेत है। 'सब रंग मोह-भंग' में हमारे समाज और राजनीति के विभिन्न रंगों' के 'मोह भंग' का नाटक है, फलत: वहाँ अभी समाधान की तो बात ही नहीं है।

नाटक में समस्या के उत्थान से लेकर उसके समाधान (जिसका रूप ऊपर लक्ष्य किया गया है) के मध्य घटनाओं की एक कड़ी देखने को मिलती है जो नाटक के आदि को अन्त तक जोड़ती है। लाल के नाटकों में घटनाओं की ये कड़ियाँ प्राय: इस प्रकार

गुँथी रहती है कि उन्हें अलग-अलग करके देखना किंचित कठिन होता है। उदाहरणार्थ- 'सगुन पंछी' में तीन कथाएं समान्तर रूप से आगे बढ़ती हैं। फलस्वरूप उन्हें एक दूसरे से स्वतंत्र करके नहीं देखा जा सकता। ऐसा करते ही नाटक का कथ्य बिखर जाता है। ये कथाएं हैं- 'राजा-रानी की कथा, पंचम एवं गंगा की कथा, तोता-मैना की कथा। इन विविध प्रसंगों में तारतम्य बनाये रखने का कार्य लाल के नाटकों में पुरुष, मसखरा, विदूषक आदि चरित्र करते हैं। नाटकों में अन्तर्हित प्रसंगों को परस्पर सुगुम्फित कर उनसे प्रतिपाद्य विषय को स्पष्ट करने की एक और शैली है जिसका प्रयोग लाल अपने नाटकों में करते हैं, वह है- 'नाटक के भीतर नाटक'। 'रातरानी' में सुन्दरम द्वारा कुन्तल के समक्ष अपने एक पुराने प्रेमी की नकल का नाटक इस शैली का एक भौण्डा उदाहरण है तो 'रक्त कमल' में कमल द्वारा भारत वर्ष की परतंत्रता विषयक खेला गया नाटक और 'करफ्यू' में संजय और कविता द्वारा युवक और युवती के नाटक की रिहर्सल अथवा 'एक सत्य हरिश्चन्द्र' में लौका द्वारा हरिश्चन्द्र के नाटक का खेला जाना इस शैली के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इनसे नाटक के थीम को स्पष्ट होने में सहायता मिलती है। यह स्पष्टीकरण कभी-कभी प्रासंगिक कथाओं और चरित्रों के संघटन द्वारा भी होता है। आधिकारिक कथा के साथ प्रासंगिक कथा के संयोजन की परम्परा गत शैली के प्रयोग के साथ इसका अपने ढंग से भी लाल ने प्रयोग किया है। 'अन्धा कुआं' में भगौती और सूका की कथा के साथ लच्छी और हीरा का प्रसंग, 'मादा कैक्टस' में अरविन्द और मीनाक्षी के मध्य सुजाता का प्रसंग, 'रातरानी' में जयदेव और शकुन्तला के साथ निरंजन और सुन्दरम का प्रसंग, 'व्यक्तिगत' में 'मैं' और 'वह' के साथ श्रीमती आनन्द का प्रसंग और 'सगुन पंछी' में तोता-मैना के साथ पंचम-गंगा का प्रसंग नाटक में प्रासंगिक कथाओं के समावेश के उदाहरण हैं। दूसरी तरफ अपने कथ्य को स्पष्ट करने के लिए नाटक के चरित्र कोई भी छोटी-मोटी कथाएं कहने लगते हैं जो अन्योक्ति परक शैली में होने से अभीष्ट अर्थ का वाहक बनती हैं। 'दर्पन' में पूर्वी द्वारा सुजान को सुनायी गयी कहानी जिसमें एक चिड़िया है, एक बिल्ली है, एक जंगल है। जंगल में राजकुमार आता है, चिड़िया उसके कन्धे पर बैठकर उसे खेल के लिए आमंत्रित करती है। जंगल हंसता है, बिल्ली रोने लगती है-----[1]

1- देखिये-दर्पन-पृ0 46-47

अथवा 'अब्दुल्ला दीवाना' में जज द्वारा सुनायी गयी वह कहानी जिसमें डायनोसार अपनी ताकत और आजादी के लिये अपने शरीर को बढ़ाते-बढ़ाते एक दिन अपने ही बोझ से स्वयं जमीन के भीतर धँस जाता है।[1]

लाल के नाटकों में कथानक का निर्माण तीन प्रकार से लक्ष्य किया जा सकता है -

1- कुछ पात्रों के लिये कथानकों का निर्माण

2- कथानक के अनुसार पात्रों को ढालना।

3- पात्र और कथानक - दोनों ही का एक विशेष वातावरण या स्थिति के अंग बनकर प्रकट होना।

कुछ पात्रों के लिये कथानक के निर्माण वाली पद्धति की दृष्टि से 'रक्त कमल' उल्लेखनीय है। कमल नामक चरित्र नाटककार के विचार-तत्व को प्रेक्षकों तक पहुंचाने का कार्य करता है। फलत: वह गढ़ा हुआ चरित्र है और उसके इर्द-गिर्द बुना गया कथानक प्रेक्षकों को बाँधे रखने का एक साधन मात्र है। पात्र के लिये कथानक के निर्माण में, पात्र केन्द्र में होने के कारण अन्य क्रिया-व्यापार गौण अथवा अथव विरल प्रभाव वाले बन जाते हैं। यह नाटककार की अपने सिद्धान्तों को प्रतिपादित करने की एक ऋजु शैली है।

कथानकों के अनुसार पात्रों को ढालने वाले नाटक में कार्य-व्यापार की प्रधानता होती है- पात्र उस कार्य-व्यापार के मध्य अपने चरित्र का निर्माण करते हैं। नाटककार द्वारा कार्य-व्यापार और पात्रों को परस्पर गूँथे जाकर प्रस्तुत करने की यह शैली ही वास्तव में एक सन्तुलित रचना-शिल्प की वाहक सिद्ध होती है।यहाँ नाटकों में पात्रों को बने बनाये साँचे में फिट न कर उन्हें परिस्थितियों के सापेक्ष विकास करने की छूट होती है। अन्तत: नाटक कथा-तत्व से सम्पृक्त होता ही है। अतएव नाटक के इस सत्य की रक्षा भी यहाँ होती है। 'अन्धा कुआं', मादा कैक्टस',

1- देखिये- अब्दुल्ला दीवाना-पृ0 103

'सूखा सरोवर', 'रातरानी', 'दर्पन', 'सूर्यमुख', 'कलंकी', 'मिस्टर अभिमन्यु', 'नरसिंह-कथा', 'गुरु', 'एक सत्य हरिश्चन्द्र', 'यज्ञ प्रश्न', 'गंगामाटी', 'सगुन पंछी', 'पंच-पुरुष', 'राम की लड़ाई' ऐसे ही नाटक हैं। इनमें कथानक के साथ-साथ पात्रों में चारित्र्य का समावेश होता जाता है।

तीसरे प्रकार के कथानक निर्माण की वह पद्धति है जिसमें स्थिति या वातावरण का चित्रण ही प्रधान होता है, पात्र एवं कथानक उस स्थिति या वातावरण विशेष के अंग बनकर सामने आते हैं। 'करफ्यू' और 'अब्दुल्ला दीवाना' इस कोटि के नाटक हैं। जिनमें स्थिति और वातावरण के चित्रण के सन्दर्भ में कथानक और चरित्र- दोनों को ही अनुस्यूत कर विकास प्रदान किया गया है। 'करफ्यू' में वातावरण व स्थिति (situations) के ही वे घटक हैं जो चरित्रों के मुखौटों को अलग कर उनकी सही पहिचान कराते हैं। यही पहिचान कथानक को विविध मोड़ प्रदान करती है। 'अब्दुल्ला दीवाना' में अब्दुल्ला की हत्या का मुकदमा जितना महत्वपूर्ण नहीं है उससे अधिक महत्वपूर्ण है वे परिस्थितियां और वातावरण जिनमें 'अब्दुल्ला' की हत्या हुई। 'करफ्यू' में करफ्यू के बीच स्त्री- पुरुष युगलों को प्राप्त एकान्त वह कारण है जिसमें वे अपनी आन्तरिक वृत्तियों से साक्षात्कार करते हैं। 'अब्दुला दीवाना' में पात्रों के जीवन में आनेवाले वे मोड महत्वपूर्ण हैं जहां उनका साक्षात्कार 'अब्दुल्ला' से होता है और जिसकी उपेक्षा कर वे आगे बढ़ जाते हैं। जिस प्रकार केवल पात्र नाटक के शिल्प की पूर्णता को स्थापित करने वाला नहीं हो सकता है वैसे ही केवल वातावरण या स्थिति द्वारा नाटक को आगे नहीं बढ़ाया जा सकता।

नाट्य शिल्प की दृष्टि से लाल के नाट्य-साहित्य का संपूर्ण आकलन करते समय कथानक के अतिरिक्त दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष जो विवेच्य है वह है भाषा। लाल के विगत तीन दशकों के नाटकों (विशेषकर संपूर्ण नाटकों में) रंग-निर्देशों के स्थानापन्न

बढ़ती हुई शब्द-निर्भरता रंग-नाट्यान्दोलन की दिशा में एक शुभ संकेत कही जा सकती है। साथ ही, नाटकों में भाषा की शक्ति को पहिचानने की सम्भावनाओं को भी एक क्रमिक आन्दोलन के रूप में देखा जा सकता है। 'अन्धा कुआं' से लेकर 'सगुन पंछी' और 'राम की लड़ाई' का सृजन इस तथ्य को स्पष्ट करने वाला है। कि इन नाटकों में आंगिक, वाचिक, सात्विक और आहार्य अभिनय के लिये निर्देशों पर अवलंबित होने की परम्पराओं को यथाशक्ति कम किया जा रहा है और निर्देशक व अभिनेताओं को उपलब्ध सम्वादों में से ही भाव, मुद्रा और रंग-सज्जा की सम्भावनाओं का पता लगाने का अवसर प्रदान किया जाने का प्रयास है। एक प्रकार से नाटककार अभिनेता और निर्देशक के कल्पना-क्षेत्र में हस्तक्षेप से बचाव का यथा सम्भव प्रयास कर रहा है। इस शब्द-निर्भरता को कालक्रम में कतिपय नाटकों के सन्दर्भ में इस प्रकार लक्ष्य किया जा सकता है -

1- अन्धा कुआं- लगभग 1900 रंग-निर्देश जिनमें अनेक लम्बे रंग-निर्देश समाविष्ट हैं।
2- मादा कैक्टस- लगभग ~~400~~ 150 रंग निर्देश जिनमें अधिकतर छोटे रंग निर्देश हैं।
3- रातरानी- लगभग 400 रंग निर्देश जिनमें अधिकतर छोटे रंग निर्देश हैं।
4- सूर्यमुख- लगभग 250 रंग निर्देश जिनमें अधिकतर छोटे रंग निर्देश हैं।
5- व्यक्तिगत- लगभग 150 रंग निर्देश जिनमें अधिकतर अत्यन्त छोटे रंग निर्देश हैं।
6- यक्ष प्रश्न- लगभग 40 रंग निर्देश(उत्तर युद्ध) और 30 रंग निर्देश(यक्ष प्रश्न) जिनमें अधिकतर अत्यन्त छोटे रंग निर्देश हैं।
7- सगुन पंछी- लगभग 150 रंग निर्देश जिनमें अधिकतर रंग निर्देश ~~अ~~ अत्यधिक छोटे हैं।

उपर्युक्त नाटकों में रंग-निर्देशों की संख्या और लंबाई के क्रमश: कम होते जाने से नाटकों में बढ़ती हुई ~~सब~~ शब्द-निर्भरता की ओर संकेत मिलता है। शब्दों द्वारा गतिशील कार्य व्यापार की सम्भावनाओं की खोज के परिणाम स्वरूप लाल के नाटकों में शब्द और कार्य अन्योन्याश्रित होकर प्रयुक्त हुए हैं। जहां शब्द भी 'चुक' जाते हैं वहां मौन अथवा अन्तराल की भाषा का प्रयोग हो जाता है। फलत: शब्द केवल

भाषिक अभिव्यक्ति न होकर अपना अर्थ विस्तार कर लेता है - मौन या अन्तराल की भाषा, प्रकाश की भाषा, संगीत की भाषा और मुद्राओं की भाषा। इस प्रकार लाल ने 'शब्द' की स्थापित अवधारणा को व्यापकता प्रदान की है और 'नाट्य शब्द' की दिशा में मोहन राकेश द्वारा किये गये प्रयत्नों को आगे बढ़ाया है।

नाट्य शब्द की शक्ति वास्तविक रूप में तभी बढ़ती है जब उसके द्वारा उभारे गये कार्य व्यापार में गाम्भीर्य हो। अगम्भीर कार्य व्यापार 'शब्द' की गहराई को कम कर उसे विरल बनाता है। कार्य-व्यापार की यह अगम्भीरता लाल के नाटकों में दो रूपों में देखी जा सकती है- प्रथम, हास्य-व्यंग द्वारा राजनीतिक अथवा नैतिक धरातल पर खड़े किये गये प्रश्नों की कटुता को कम करना। यह कार्य एक प्रकार से शक्कर में लपेटकर कड़वी गोलियां खिलाने के समान है। लाल के लीला-नाटकों में ऐसी अगंभीरता विदूषकों या मसखरों- मसखरों द्वारा तोड़ी गयी है। ये चरित्र नाटक की कटुता को हल्का करते चलते हैं। दर्शक-समाज के मानस को बोझिल होने से बचाये रखने के लिए यह आवश्यक भी है। लेकिन दूसरी ओर, जब नाटक का कार्य-व्यापार 'रिलैक्स' किये जाने के नाम पर भौण्डी हास्य स्थितियों को सायास सामने रखता है तो कार्य व्यापार की यह अगम्भीरता प्रेक्षक और पाठक-दोनों को ही ऊब ही प्रदान करती है। 'सुन्दर-रस' में कविराज और भट्टाचार्य के मध्य कतिपय ऐसे ही प्रसंग वर्णित हुए हैं। प्रथम प्रकार की अगम्भीरता विषय की कटुता और दर्शक समाज की अपेक्षाओं को ध्यान में रख प्रयुक्त किये जाने के कारण आवश्यक है। और इससे नाटक का औदात्य बढ़ता ही है। इस प्रकार की अगम्भीरता को 'कामिक रिलीफ' के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। इस प्रकार 'रिलीफ' प्रदान करने के बाद कुशल नाटककार नाटकों में निहित 'ईहा' (volition) तत्व को कतिपय 'अनिवार्य-दृश्यों' के माध्यम से प्रकट कर उस 'रिलीफ' से उत्पन्न व्यवधान का परिहार कर लेते हैं। 'मादा कैक्टस' में द्वितीय अंक में सुधीर और गंगाराम के मध्य हास्य प्रसंग के बाद अरविन्द और श्रीमती दिवाकर(सुजाता) की भेंट वाला प्रसंग ऐसा

ही अनिवार्य दृश्य है, 'नरसिंह कथा' में घड़ा-रानी से हिरण्यकशिपु का विवाह नाटक के संघर्षमय कार्य-व्यापार के मध्य थोड़े समय की 'रिलीफ' है लेकिन इसके तुरन्त पश्चात हिरण्यकशिपु और कयाधू का सम्वाद नाटक की 'ईहा' को फिर अपनी संपूर्ण ऊर्जा के साथ सामने ला खड़ा करता है, 'सब रंग मोह भंग' के पांचवें दृश्य में भीम के मोह वाला प्रसंग तो 'कामिक-रिलीफ' होने के साथ-साथ समसामयिक सन्तुष्टीकरण वाली राजनीति पर व्यंग्य करने वाला एक अनिवार्य दृश्य बन जाता है।

'ईहा' तत्व को भावावेगों द्वारा उभारने की दिशा में लाल के नाटकों ने अपनी सामर्थ्य का परिचय अनेक स्थानों पर दिया है। इससे नाटकों में गति उत्पन्न होती है। लेकिन द्रष्टव्य यह है कि वे ही नाटक भावावेगों द्वारा 'ईहा' को प्रकट करने में अधिक सफल हुए हैं जिनमें चरित्र, उनमें अनुस्यूत द्वन्द्व और नाटकीय विडम्बनाएं आसद बोध के साथ प्रस्तुत किये गये हैं। 'मादा कैक्टस' में मीनाक्षी की सफेद घोड़े के पीछे भागते बच्चों के पैरों तले रौंदने की आवेगमय स्थिति, 'रातरानी' में अपने पत्नीत्व के कर्तव्य का निर्वाह करने को कटिबद्ध कुन्तल का माथे पर केशर का पुष्प लेकर उत्तेजित मजदूरों की भीड के बीच दौड़ना, 'दर्पन' में समाज द्वारा सतायी गयी पूर्वी का विवाह के लाल जोड़े को त्याग कर सन्यासिनी के वस्त्र पहनकर हरिपद्म के समक्ष आने की विडम्बना जन्य स्थिति, 'सूर्यमुख' के वेनुरती का प्रद्युम्न से अभिसार के लिये श्रृंगार करना लेकिन दर्पण में कृष्ण मुख देख पड़ने की स्थिति में चीख पड़ना आदि ऐसे प्रसंग हैं जो नाटकों में गति उत्पन्न करने में अहम भूमिका निभाते हैं। ये ही वे प्रसंग हैं जिनसे नाटकों में अनुभूति पक्ष प्रबल होता है। एक ओर यदि इन नाटकों में निहित उदात्त विचार (High thinking) नाटक की 'क्रिएटिविटी' को बढ़ाता है तो दूसरी ओर इनकी उदात्त नाट्यानुभूतियां नाटककार के चिन्तन में कल्पना-शक्ति को प्रबल करती है। 'दर्पन' की पूर्वी आनुभूतिक धरातल पर खड़ी होने पर ही यह कल्पना कर पाती है मानों दर्पन उसके लिये पारदर्शी हो गया है और उसके परे एक नीला आकाश दिखायी दे रहा है जिसमें सितारों की एक नाव चल रही है आदि आदि।

'सूर्यमुख' में नागकुण्ड की पहाड़ियों में आत्म-निर्वासन को भोग रहे प्रद्युम्न को जब-जब वेनुरती की स्मृति हो आती है तब तब पहाड़ियों पर उसे बिना बादल के बिजली चमकती प्रतीत होती है और बादल गरजते सुनायी देते हैं। कालान्तर में लाल के नाटकों इस कल्पना-शक्ति का अभाव देखने को मिलता है। इसका कारण लीला नाटकों में अनुभूति से अधिक विचार-तत्व पर ध्यान किया जाना है। इससे नाटकों की 'क्रिएटिविटी' तो बढ़ती है किन्तु कल्पना पूर्ण दृष्टि का ह्रास होता है। इस दृष्टि से लाल के नाटकों में दो स्पष्ट विभाजन रेखाएं खींची जा सकती हैं - प्रथम, वे नाटक जिनमें आवेग(passion) विचार या तर्क पर हावी होता दिखायी देता है । इनमें कल्पना शक्ति पर जोर दिया जाता है और यह शक्ति चरित्रों में भावावेग की अवस्था में उत्पन्न होती है। इसी आवेग और कल्पना के प्रयोग द्वारा वे वैचारिक गहनता की सृष्टि करते हैं। 'अन्धा कुआ', 'मादा कैक्टस', 'दर्पन', 'सूर्यमुख' आदि ऐसे ही नाटक हैं। दूसरी ओर वे नाटक हैं जिनमें आवेग की अपेक्षा वैचारिक-चिन्तन और मोहाविष्ट आनन्द की अपेक्षा तर्क द्वारा प्राप्त आनन्द की प्रधानता होती है।यहाँ प्रेक्षक भावावेगों में अपने 'स्व' का हमेशा विगलन ही नहीं कर देता प्रत्युत तटस्थ होकर उन स्थितियों की समीक्षा भी करता है। समस्त लीला नाट्य-साहित्य की यही प्रकृति देखने को मिलती है। इन्हीं दोनों दृष्टियों को समक्ष रखकर लाल ने अपने नाटकों में समवेत गान(choras) का प्रयोग किया है। एक तरफ ये समवेत गान नाटककार के लोक-विश्वास के प्रतीक बनकर समक्ष आते हैं तो कहीं वे नाटककार के मानस पर चरित्रों के क्रिया-कलापों से उत्पन्न ~~प्रतिक्रिया-से~~ प्रतिक्रियाओं के परिणाम स्वरूप प्रयुक्त होते हैं। नाटककार ने इनका प्रयोग प्राय: लोक-नाट्य-रूढ़ि केनिर्वाह की दृष्टि से किया है।

लाल के नाटकों में विचार(Idea) और शिल्प(Form) तत्व के सामान्य स्वरूप पर दृष्टि डालने के उपरान्त यहाँ यह भी देखना प्रासंगिक है कि प्रस्तुत प्रबंध में उनके नाटकों के सम्बंध में विवेचन करते समय इन दोनों तत्वों का समावेश किस प्रकार किया गया है ?

किसी भी नाटक पर विचार करते समय उसके 'कण्टेण्ट' को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है- प्रथम, नाटक का थीम, उसका उद्देश्य और उसमें प्रच्छन्न अवधारणा। ये तीनों तत्व नाटक में भाषा के माध्यम से प्रकट होते हैं। इसी भाषिक माध्यम से उक्त तीनों तत्वों को प्रेक्षक तक पहुँचने का वाहन मिलता है। इस 'कण्टेण्ट' का दूसरा भाग अनुभव, संवेग और भावना से सम्बद्ध है। इन तीनों तत्वों को प्रकाशित करने वाले माध्यम नाटकीय कार्य-व्यापार, चतुर्विध अभिनय, अभिनयात्मिका-वृत्ति प्रकाश व संगीत योजना एवं नाट्य-भाषा व सम्वाद होते हैं। तात्पर्य यह कि सम्पूर्ण 'स्टेज क्राफ्ट' इन तीन तत्वों को अभिनेता से प्रेक्षकों तक पहुँचाने का कार्य करता है। इस प्रकार 'कण्टेण्ट' के उपर्युक्त छः तत्व ही भाषा और अन्य रंग-तत्वों के माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं। नाट्य-समीक्षा के ये ही मानदण्ड हैं जिन पर नाटकों को कसा जा सकता है। लाल के नाटकों के विवेचन में यही दृष्टि अनुसन्धित्सु के समक्ष रही है और इसी के प्रकाश में नाट्य-साहित्य का आकलन किया गया है। इस दृष्टि को निम्नांकित चित्र के द्वारा अधिक स्पष्ट रूप में समझा जा सकता है -

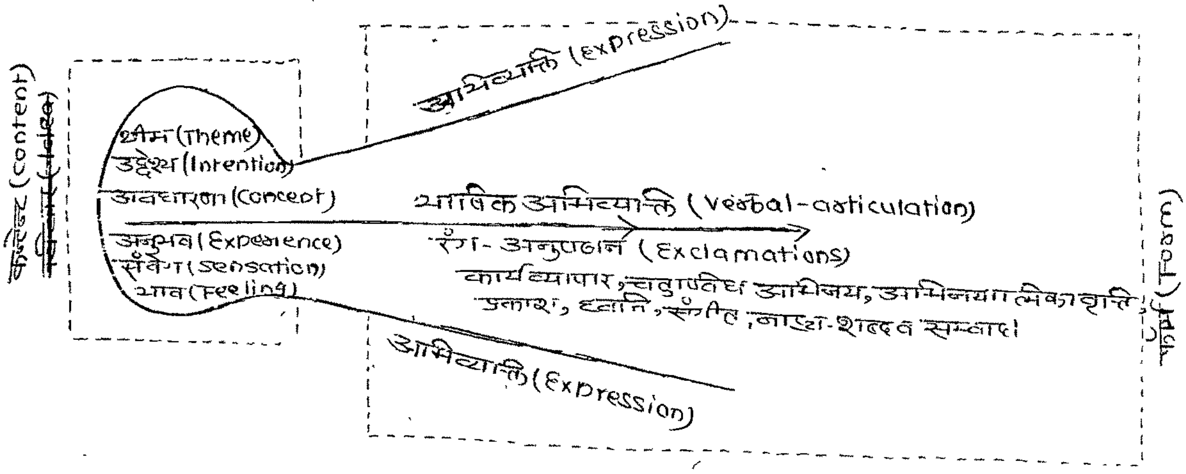

'कण्टेण्ट' की दृष्टि से विचार करने पर लाल के नाटकों में सृजन की दो धाराएं देखने को मिलती हैं। ये धाराएं उनके समग्र नाट्य-साहित्य की रचना में रचनाकार की मानसिकता की द्योतक हैं। नाटकों का प्रयोग युग इन धाराओं से सम्पृक्त हुआ दिखायी देता है। सन् 1951 से 1969 के मध्य में रचे गये उत्थान कालीन संपूर्ण

नाटकों में उक्त दृष्टि से विभाजन किये जाने पर यह स्पष्ट होता है कि लाल ने उक्त दो धाराओं-नागर और लोक- को अपने मानस में रख नाट्य-सृजन कर चुनौती का कार्य किया है। यह इसलिये कि दोनों धाराओं में अपनी सर्जनशीलता का परिचय देकर लाल ने अपने व्यापक जीवनानुभवों का प्रमाण उपस्थित किया है। अनुभवों के साथ-साथ नागर और लोक परिवेश को अपनी रचना में स्थान देना -यह एक अतिरिक्त दृष्टि है। प्रारंभिक नाटकों में एक ओर जलालपुर और उसके आसपास की सामाजिकता का प्रतिबिंबन देखने को मिलता है और दूसरी ओर आधुनिक समाज और उसका 'तथा-कथित प्रोग्रेसिव' भी देखने को मिलता है। 'अन्धा कुआं' और 'नाटक तोता-मैना' प्रथमप्रकार की नाट्य-दृष्टि का परिणाम है। फलस्वरूप वे लोक-धारा से सम्पृक्त नाटक कहे जा सकते हैं। दूसरे प्रकार की नाट्य-दृष्टि जिसे नागर धारा से सम्बद्ध माना जा सकता है, के प्रभाव से 'मादा कैक्टस', 'रातरानी' आदि नाटकों की रचना हुई। नागर धारा से सम्बंधित इन नाटकों को अनेक दृष्टियों से विवेचित किया जा सकता है। इन दृष्टियों में से एक है समाज का वह स्तर जहां से नाटक के लिये विषय-वस्तु का चयन किया जाता है। सामाजिक स्तर के अनुरूप ही शिष्टाचार, व्यवहार, परिवेश एवं वातावरण का वर्णन नाटक में किया जाता है। 'रातरानी' में वातावरण एवं परिवेश का आभिजात्य नागरिक जीवन के अनेक औपचारिक शिष्टाचारों के साथ मिलकर, पात्रों के परस्पर व्यवहारों से जुड़कर नगर-बोध उत्पन्न करता है। जयदेव और उसका प्रेस- मजदूरों के साथ संघर्ष, कुन्तल,सुन्दरम और निरंजन की साम्यवादी चेतना और जयदेव की सफेद पोश निम्नस्तरीय मानसिकता इस नाटक को नगर-सभ्यता के प्रभावों से जोड़ती है। इनके मध्य माली बाबा का चरित्र अपनी फुलवारी के साथनाटक में लोक तत्व की सहज सृष्टि करता प्रतीत होता है। 'मादा-कैक्टस' के मनोवैज्ञानिक जीवन सन्दर्भ इस नाटक के चरित्रों को वैचारिक धरातल पर मूल्यगत प्रश्नों तक खींच ले जाते हैं। यह एक तथ्य है कि ये मूल्य ~~आन्तरिक-खोखलेपन~~ चारित्रिक कुण्ठा, मनोग्रंथि, विसंगति-बोध, भाग्यवाद, थोथे आदर्शों की लकीर पीटने के उपरांत आन्तरिक खोखलेपन को प्रकट करने वाले हैं और ये नगर-बोध के परिणाम-स्वरूप हैं। 'दर्पन' में पूर्वी के अन्दर निहित विसंगत जीवन-दर्शन को प्रकट कर नाटक में

नगर-बोध की ही सृष्टि की गयी है। इन नाटकों में भाषा-प्रयोग के स्तर पर भी एक आभिजात्य शब्दावली को प्रयुक्त होते देखा जा सकता है। शब्दों में तत्सम प्रयोगों की प्रवृत्ति, अंग्रेजी प्रयोग आदि इस नागर-धारक के नाटक पर पड़े प्रभाव को व्यक्त करते हैं। 'रातरानी' में कुन्तल और निरंजन के सम्वादों में कुन्तल द्वारा 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' से और निरंजन द्वारा 'साइनो-डी-बेर्जराक' से प्रयुक्त उद्धरण उनके आभिजात्य चिन्तन के प्रमाण ही हैं। नाट्य-सृजन की दूसरी धारा इस युग के 'अन्धा कुआ', 'नाटक तोता मैना' और 'सूखा सरोवर' में मुखर रूप से समक्ष आती है। इन नाटकों में 'लोक तत्व' तीन स्तरों पर बुनियादी प्रश्नों पर लेखन कार्य करता है तो सहज ही उसके अनुरूप वातावरण, सांस्कृतिक और सामाजिक परम्परा एवं रीति-रिवाज व बोलचाल के रूपों का प्रयोग करता है। 'अन्धा कुआ' इन प्रयोगों की दृष्टि से प्रतिनिधि नाटक कहा जा सकता है जिसमें कमालपुर की सामाजिकता के माध्यम से लोक जीवन को विस्तार के साथ विवेचित किया गया है। 'लोक मानस के अनुसार ही विषय-वस्तु का चयन नाटककार की एक मुख्य दृष्टि है। लोक-रुचि के अनुसार यह विषय-वस्तु पौराणिक, लौकिक या काल्पनिक -किसी भी प्रकार की हो सकती है। 'अन्धा कुआ' की विषय-वस्तु का क्षेत्र लोक जीवन है तो 'नाटक तोता मैना' लोक-जीवन से ही ली गयी गाथाओं पर आधारित है जिसके साथ राजा औध्वज और रानी की काल्पनिक कथा को जोड़ा गया है, 'सूखा सरोवर' लोक-विश्वास, कल्पना और मिथक का समवाय प्रस्तुत करता है। इस प्रकार के नाटकों की विषय वस्तु के ~~लोक~~ लोकधर्मी प्रभावों और प्रवृत्तियों को स्पष्ट करने के लिये डा0 त्रिलोचन पाण्डेय द्वारा निर्वाचित निम्नांकित बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है -

1) लोक कथाओं एवं चित्रणों के प्रयोग द्वारा।
2) ग्रामीण समस्याओं के चित्रण द्वारा।
3) लोक नाट्य शैलियों के अनुकरण द्वारा।
4) लोकगीतों, लोक विश्वासों आदि के कलात्मक प्रयोग द्वारा।[1]

1- समकालीन हिन्दी नाटकों में लोकधर्मी प्रवृत्तियाँ-डा0 त्रिलोचन पाण्डेय, पृ0 17
रंगयोग-814

'नाटक तोता-मैना' और 'सूखा सरोवर' लोक कथाओं से प्रभावित नाटक है। दूसरी ओर 'अन्धा कुआ' ग्रामीण जीवन की विविध समस्याओं और उनके अन्दर छिपे एक सार्वभौमिक प्रश्न को समक्ष रखता है। लोक परिवेश, स्त्री-पुरुष सम्बंधों को 'नाटक तोता मैना' समक्ष रखता है। यह नाटक विशुद्ध लोक-शैली(मुखौटों और कठपुतली नृत्यों वाली) पर आधारित है। दूसरी ओर 'सूखा सरोवर' की गीति-नाट्य शैली भी अपने गीतों से लोक तत्व का स्मरण दिलाती है। 'अन्धा कुआ' के लोक-गीत (चक्की चलाती हुई औरत द्वारा-तीसरा अंक, भूला भूलती लड़कियों का गीत-दूसरा अंक) और लोक-विश्वास (वर्षा में पहले दिन धान बोने का सगुन पृष्ठ-15 मंत्र और भाड़-फूंक पृ0 22), सत्य व प्रेम हनन से अकाल होना- सूखा-सरोवर-पृ013, प्रेम प्रेत का पर्वत से उतर कर राजा को लील जाना- नाटक तोता मैना)- इन नाटकों को लोक धारा से जोड़ते हैं। इन्हीं नाटकों में चरित्र व भाषा का जो गठन है वह वातावरण के सानुकूल है। भगौती, सूका, राजी, अलू, हरखू, नन्दो आदि ग्रामीण जीवन के मध्य श्वांस लेते हुए चरित्र हैं, 'नाटक तोता मैना' और 'सूखा सरोवर' के के राजा-रानी या तोता-मैना से चरित्र और पात्र लोक दर्शकों के लिये सहज सम्प्रेष्य होने के कारण लोक तत्व से संयुक्त हैं ' प्रेत जैसा अप्राकृत पात्र तो लोक-मानस के सहज विश्वास को अभिव्यक्ति देता है। 'अन्धा कुआ' में जब ये पात्र अपनी भाषा में बोलते हैं तो वे ग्रामीण जीवन को स्वर देने में अधिक सक्षम हो जाते हैं। यह भाषा अनेक मुहावरों, शब्दों आदि से भरी पड़ी है जो नाटक के लोक तत्त्व का प्रमाण है- नेसुहा, गँड़ासा, उबहन, बरारी, पगहा, ढाके, भरोषा, तारव आदि और 'कलेजा भाँभर करना', 'मुंह की लगी डोमड़ी गावै ताल बेताल', मर मर करैं बैल्वे, बैठे खायं तुरंग', 'नगारा मारना' आदि। यहीं भाषा का यह रूप भी द्रष्टव्य है- 'देख आयन हैं बाबू, डंडवा वाले खेत में कुछ पानी है, कुछ पानी भगवान दीन बाबू के परती में से कटाय लिहेन हैं, अब तो अपने खेत में यतना पानी ह्वैं ग बाय कि वह मा जोत हैं गाय कै आमिला मार दिहा जाय।'[1] लोक नाटक की भाषा की यह अनगढ़ता उ

1- अन्धा कुआ- पृ0 19

उसका वैशिष्ट्य है । यह अनगढ़ता उसे अनौपचारिक शिल्प से जोड़ती है जहाँ शास्त्रीय बन्धन की अपेक्षा लचीलापन (जैसा कि ऊपर कहा गया है) महत्वपूर्ण है । मंच पर नाटक के परिवेश को चित्रित करने के लिये मंच-सज्जा, संगीत या ध्वनि का प्रभाव जितना महत्वपूर्ण हो सकता है, लोकभाषा भी उतनी ही । यह मंच की सज्जा में परिवेशनिर्माण की पूर्णता के अभाव की पूर्ति कर देती है । रिचर्ड शेखनर ने अनौपचारिक शिल्प द्वारा जिस परिवेशीय रंगमंच(Environmental theatre) की कल्पना इस शताब्दी के छठें दशक ('मदरकरेज' के मंचन के साथ) में की थी ।- लोक धारा से प्रभावित इस प्रकार के हिन्दी नाटकों में स्वतंत्रता के बाद से ही होना प्रारम्भ हो गयी थी । वस्तुत: इसका उद्देश्य नाटक और उसके दर्शकों को अनुभूति के समान धरातल पर खड़ा करना था ।

वस्तुत: नागर व लोक धाराओं के प्रति सृजनात्मक सजगता का मूल कारण नाटककार की दर्शकों के दोनों वर्गों के प्रति रुचि होना । इसीलिये दोनों प्रकार के दर्शकों की अपेक्षाओं को ध्यान में रखकर चलना नाटककार के लिये नितान्त आवश्यक होता है । इस सम्बंध में ब्रेण्डर मेथ्यूज उक्त तथ्य की पुष्टि करता है- 'नाटक को तो समस्त जन-समुदाय को प्रसन्न करना होता है क्योंकि नाटक की शक्तिमत्ता उसकी व्यापक प्रभावशीलता में ही है । उसका प्रयोजन ही निष्फल हो जाता है यदि उसमें सबके लिये कुछ न कुछ न हो- तरुण और वृद्ध, धनवान और निर्धन, स्त्री और पुरुष, शिक्षित और अशिक्षित सभी के लिये । ------ इसे जन समूह का ही क्रिया-व्यापार कहा गया है । यदि नाटक केवल एक जाति, एक वर्ग और एक श्रेणी को आकर्षित करने की सोचता है तो कभी सफलता की आशा नहीं कर सकता । वह तो संस्कारों की विभिन्नता वाले एक समूचे समुदाय की कला होनी चाहिये ।[1] लाल के नाटककार के रूप में उत्थान को दो चरणों में देखा जाना समीचीन होगा क्योंकि रचनात्मक धरातल पर लाल के ये उत्थानकालीन नाटक स्पष्टत: दो धरातलों पर विभाजित

नाटक-साहित्य का अध्ययन-ब्रेण्डर मेथ्यूज-अनु० इन्दुजा अवस्थी, पृ० 46-47

थे- अयथार्थवादी धरातल और यथार्थवादी धरातल।प्रथम धरातल पर अवस्थित नाटकों में अन्धा कुआ, मादा कैक्टस,सुन्दर रस, और सूखा सरोवर विवेच्य हैं और दूसरे धरातल पर अवस्थित नाटकों में रक्त-कमल,रातरानी और दर्पन विवेच्य हैं।

सन् 1966 से 1970 के मध्य रचे गये नाटकों में नागर और लोक धाराओं के प्रभाव को देखने के लिये इस काल के तीन नाटकों- 'सूर्यमुख', 'कलंकी' और 'मिस्टर अभिमन्यु' - को लक्ष्य किया जाना चाहिये। तीनों ही नाटकों में पौराणिक संदर्भों के प्रयोग देखे जा सकते हैं। लेकिन प्रथम दो नाटकों में ये सन्दर्भ कथ्य और परिवेश-दोनों तक विस्तृत हुए हैं जबकि तीसरे नाटक में पौराणिक सन्दर्भ का केवल संकेत है, शेष कथ्य और परिवेश आज के सामाजिक जीवन के मध्य अनुस्यूत किया गया है।इसी कारण 'सूर्यमुख' और 'कलंकी' में लोक तत्व का समावेश व्यापक रूप से हो सका है। 'सूर्यमुख' में प्रद्युम्न का मुखौटा पहनकर नागकुण्ड की पहाड़ियों में निवास करना और वभ्रु व उसके सैनिकों द्वारा अर्जुन को घेरकर मुखौटा नृत्य करना लोक तत्व को प्रकट करने वाले आयाम हैं। नाटक के तीसरे अंक में यदुवंश की स्त्रियों का उस वृक्ष के सम्बंध में वार्तालाप करना जहाँ बहेलिये ने कृष्ण के तलवे में तीर मारा था- सहज लोक विश्वास को व्यक्त करता है। नाटक में वृद्ध द्वारा गाया गीत-'जब यदुवंश कृष्ण अवतारा।होइहि हरन महामहि भारा।कृष्ण तनय तनय होइहि पति तोरा। वचन अन्यथा होइ न मोरा। रति गवनी सुन शंकर बानी। कथा अपर अब कहौं बखानी।' - लोक विश्वास की आधार भूमि पर खड़ा है। 'कलंकी' में यह लोक-धारा उसके रूपकात्मक फार्म, धर्मकथा, जातक चित्रों और बिम्बों आदि द्वारा पहिचानी जा सकती है। वातावरण के निर्माण में लोक-तत्वों का समावेश इस नाटक की शक्ति है। स्तूप के पीछे बीन स्वरों का भागना, बाँसुरी का संगीत फूटना और तब तीन कृषकों का वार्तालाप इसके उदाहरण हैं। तंत्र कालीन वातावरण, वैसे ही गीत और उसके अनुसार तांत्रिक और अवधूत जैसे चरित्रों का सृजन नाटक में आदिम लोक-जीवन के वातावरण को मूर्तिमन्त कर देते हैं। जातक कथा का अभिनटन और शव-साधना जैसे

प्रसंग नाटक में लोक-नाट्य-रूढ़ियों का समावेश करते हैं। 'कलंकी' अवतार की कल्पना हमारे लोक जीवन में फैले विश्वास का ही परिणाम है। 'कलंकी' के चरित्रों की सोयी चेतना, निरक्षरता और यथास्थितिवाद लोकजगत की प्रकृति को मुखर करता है।

इस काल-खण्ड के तीसरे नाटक 'मिस्टर अभिमन्यु' में आज के मूल्यविहीन समाज में मूल्यों की रक्षा के लिये लड़ने वाले व्यक्ति के मनोमंथन को प्रकट किया गया है। कलक्टर राजन का यह युद्ध अन्ततः असफल रहता है और यह असफलता नाटक के अन्त में जिस निराशा को जन्म देती है वह आधुनिकता-बोध अथच नगर-बोध का परिणाम है। राजन को मूल्यविहीनता के स्तर पर चारों ओर से जिस समाज ने घेर रखा है- वह युग की मिथ्या अहं प्रवृत्ति, स्वार्थपरता, अस अवसरवादिता और पूंजीवादी मनोवृत्ति से ग्रस्त है। ये सब आज की नगर-सभ्यता की देन हैं और नाटककार ने इनके विरुद्ध एक भ्रामक युद्ध का सर्जन प्रस्तुत नाटक में किया है।

सन् 1971 से 1975 के मध्य रचे गये नाटक-'करफ्यू', 'अब्दुल्ला दीवाना', 'व्यक्तिगत' और 'नरसिंह कथा'- में अंतिम नाटक को छोड़कर अन्य तीन नाटकों में नागर धारा के प्रभाव को देखा जा सकता है। 'करफ्यू' सामाजिक सम्बंधों पर लगे करफ्यू को तोड़ने की प्रक्रिया का नाटक है। आज के यांत्रिक जीवन में परस्पर आत्म-साक्षात्कार के अभाव में ही ये करफ्यू लगते हैं। जीवन की यह यांत्रिकता और पारस्परिक सम्बंधों में अपरिचय की स्थिति नगर-बोध का परिणाम है और इस दृष्टि से यह नाटक नागर-धारा से सम्बंधित है। मनीषा, कविता, संजय और गौतम जैसे चरित्र इस नगर सभ्यता की देन हैं और अपनी ओढ़ी हुई तथाकथित सभ्यता को उधेड़कर फेंकने के लिये छटपटा रहे हैं। नाटक के अंत में इनको जिस सहज जीवन-दर्शन की प्राप्ति होती है उसके साधारणीकृत होने में अभी एक लम्बा समय लगेगा- कुण्ठाओं के मब मध्य अपनी मनुष्यता की पहिचान खोते जा रहे आदमी की विडम्बना 'करफ्यू' का प्रतिपाद्य है और यह उसके नगर बोध से प्रभावित होने का प्रमाण है। 'अब्दुल्ला-दीवाना' की हत्या आधुनिक जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी है। इस हत्या के लिये

उत्तरदायी समाज का चरित्र, उसमें छिपी विसंगतियां और उसकी आसन्न मृत्यु नगर-बोध का हेतु बनता है और यही नाटक को सही अर्थों में सम-सामयिक बनाता है। चरित्रों में पारस्परिक व्यवहार में जो असहजता इस नाटक में देखने को मिलती है, वह नगर-बोध की परिचायक है। 'व्यक्तिगत' में 'मैं' का चरित्र-हनन और 'वह' के प्रति शोषण उसे आधुनिक समाज की विसंगतियों से जोड़ता है- यह नाटक में नगर-बोध की ओर इंगित है। 'व्यक्तिगत' की 'वह' 'मैं' के विरुद्ध एक मौन विद्रोह का आह्वान करती है जो नाटक में आधुनिकता बोध एवं नगर-बोध के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में देखा जा सकता है।

उक्त कालखण्ड के नाटक 'नरसिंह कथा' की प्रकृति में लोक-तत्वों का समावेश हुआ है। परिणाम स्वरूप वह लोक-धारा से प्रभावित नाटकों की श्रेणी में रखा जा सकता है। नरसिंह अवतार वाला पौराणिक प्रसंग स्वयं में एक से ऐसी नाट्यवन्त भंगिमा अनुस्यूत किये हुए है जिसे लोक नाटकों में व्याप्त रूढ़ियों के मध्य उभारा गया है। घड़े के साथ हिरण्यकशिपु का विवाह, विवाह का कर्मकाण्ड और नाटक के अन्त में हुताशन का नरसिंह के रूप में प्राकट्य लोक-जीवन के संगीत तत्व को समाहित किये है। यह संगीत नाटक के अन्त में एक सहज लय की उत्पत्ति करता है। फलस्वरूप इस नाटक को लोक धारा से सम्पृक्त माना जा सकता है।

सन् 1976 से अद्यतन रचे गये नाटकों में यह लोक-धारा लीला-दर्शन के रूप में प्रकट हुई है। इन नाटकों में 'रिजव' से 'रिलैक्स' होते जाने की प्रक्रिया ही उनके लोक धारा से जुड़े होने का प्रमाण है। मुख्य रूप से इन नाटकों में यह लोक धारा लोक जीवन के सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक आस्थाओं के विवेचन के रूप में देखी जा सकती है। लाल द्वारा लोक जीवन के इन आयामों को अपने नाटकों स्थान देने के पीछे यह दृष्टि रही है कि हम अपनी सभ्यता को संस्कृति-रहित बनाकर

और अपने व्यक्तिगत अहं में डूबकर अपने आपको विनाश के कगार तक ले जाने से स्वयं को बचा सकें। व्यक्तिगत अहं के द्वारा जीवन की निर्मलता और सहजता किस प्रकार प्रताड़ित की जाती रही है- ये नाटक इस पीड़ा को उकेरने में भी सहायक हुए हैं। 'गंगामाटी' की गंगा अन्तत: जिआहो देवी की पूजा द्वारा भारतीय सांस्कृतिक जीवन से आज के मनुष्य को जुड़ने की प्रेरणा देती है, 'एक सत्य हरिश्चन्द्र' कालों का हरिश्चन्द्र की कथा की व्याख्या कर उससे सच्चे म जीवन-धर्म की प्रतिष्ठा करता है और इस प्रकार एक नैसर्गिक सहज संस्कृति की प्रतिष्ठा करता है, 'सगुन पंछी' के पंचम और गंगा लोक समाज में नारी-पुरुष के सहज सम्बंधों की झांकी दिखाकर तथाकथित नागर-समाज में उसके अभाव का दर्शन कराता है, 'पंच पुरुष' अथवा 'संस्कार ध्वज' में तो गांव के लोगों के सामाजिक व राजनीतिक संस्कारों का यथार्थ चित्र प्रस्तुत कर गांव पर शहरी संस्कृति के कुप्रभावों की भी चर्चा की गयी है। लोक-जीवन को उसी 'फार्म' में प्रकट करने की दृष्टि से 'एक सत्य हरिश्चन्द्र' में निहित नौटंकी वाली लोक नाट्य रूढ़ियां और 'सगुन पंछी' में मुखौटों और पंक्तिबद्ध अभिनय की सम्भावनाओं को सत्य किया जा सकता है।

लाल के व्यापक रंग सम्भावनाएं लिये नाटक और व्यापक रंग धर्मों से सम्पृक्त एकांकी साहित्य हिन्दी नाटक और रंगमंच की दिशा में लाल की महत्वपूर्ण भूमिका का प्रमाण है। इस दिशा में लाल की महत्वपूर्णदेन यह रही है कि उन्होंने अपने रंग कर्म को लोक और आभिजात्य-दोनों वर्गों की रुचि और संस्कारों से जोड़ा। एक ओर, आभिजात्य वर्ग के दर्शक को उसके जीवन से साक्षात्कार कराने और उसी के जीवन से सम्बंधित कतिपय प्रश्नों पर विचार करने हेतु 'मादा कैक्टस', 'करफ्यू', और 'अब्दुल्लादीवाना' जैसे नाटकों का सर्जन किया एवं 'हाथी घोड़ा चूहा' और 'काफी हाउस में इन्तजार' जैसे एकांकियों की रचना की और दूसरी ओर ठेठ लोक रंगों में रंगे जीवन को 'अन्धा कुआं', 'एक सत्य हरिश्चन्द्र', 'गंगामाटी', 'पंचपुरुष' या 'संस्कार ध्वज' और 'राम की लड़ाई' जैसे नाटक और मम्मी ठकुराइन', 'मंडवे का मोर' और 'गांव का ईश्वर' जैसे एकांकियों में उकेरा है। लेकिन यह एक तथ्य है कि

लाल का मन गाँव, उसके प्रश्नों की सूली पर लटके जीवन, उसके सांस्कृतिक जीवन का चित्रण करने में जितना रमा है उतना आभिजात्य जीवन की वैयक्तिक और सामाजिक कुण्ठाओं की प्रस्तुती और सुलझाव में नहीं। यही कारण है कि 'करफ्यू' जैसा अत्याधुनिक चिन्तन वाला नाटक उनके समग्र नाट्य-साहित्य के मध्य 'मिसफिट' हो जाता है। उनका लोक रंग नाटकों में ही उभरा हो, ऐसी बात नहीं है। 'सूने आँगन रस बरसे' और 'एक बूंद जल' जैसे कहानी संग्रह और 'धरती की आँखें, 'हरा-समन्दर गोपीचन्दर', 'काले फूल का पौधा', 'बया का घोंसला और साँप' जैसे उपन्यास लाल का ऐसा नाट्योतर साहित्य है जिसमें लोक जीवन को उसकी गहनता के साथ उभारा गया है। स्थान स्थान पर जब वे पूर्वान्चल की संस्कृति को, उसकी विशेष मुद्राओं को अपने लेखन का केन्द्र बिन्दु बना लेते हैं तो उनका देहाती व्यक्तित्व झलक पड़ता है। देहाती जीवन की इस सहजता को जब वे अपने आस-पास के आभिजात्य और ओढ़े हुए सम्भ्रान्त नागरिक जीवन में नहीं पाते हैं तो उनका विद्रोही मन इस आभिजात्य को आडे हाथ लेता है और 'करफ्यू', 'अब्दुल्ला - दीवाना', 'व्यक्तिगत' आदि की रचना हो पड़ती है। तात्पर्य यह कि उनके उक्त नाटक प्रतिक्रिया के परिणाम बनकर सामने आते हैं। इन नाटकों के चरित्र नाटककार के देहाती मन के दर्पण में झांककर जैसे आत्म साक्षात्कार करते प्रतीत होते हैं। इसी आत्म साक्षात्कार की प्रक्रिया में लाल इन चरित्रों को उनके बिखराव और टूटन का ज्ञान कराते हैं। अज्ञेय जी के शब्दों में- 'उनके (लाल के) नाटकों में भी हमारी कुतूहली दृष्टि के सामने कतार की कतार टूटते लोगों की आती है- वे कैसे टूटे हैं, कैसे टूट रहे हैं, यही हम लगातार देखते चले जाते हैं।[1]

लाल की 'लोक' के प्रति अधिक रुचि का परिणाम उनके नाट्य-साहित्य में उन स्थानों पर लक्ष्य किया जा सकता है जहाँ वे हमारे यहाँ के सांस्कृतिक मंच के रूप

1- जो दिया है- अज्ञेय (कृतिकार लक्ष्मीनारायण लाल-पृ0 10

रामलीला व कृष्णलीला और नौटंकी, स्वांग,यात्रा, भवाई, तमाशा, यक्षगान इत्यादि लोक-नाट्य रूपों की झलक देने लगते हैं। कलाकारों के समूहीकरण के लिये एक ही समय में अनेक स्तरों पर भिन्न-भिन्न दृश्यों का संयोजन रामलीला व रासलीला की विशिष्ट रूढ़ियां हैं। लाल के 'गंगामाटी' नाटक में प्रयोग के स्तर पर यह प्रभाव देखा जा सकता है।-('गंगामाटी गांव के मंच पर विभिन्न स्थलों में ये दृश्य एक साथ हो रहे हैं- पर क्रमशः प्रकाश से आलोकित पहला दृश्य- दो तांत्रिक बैठे मंत्र पढ़ रहे हैं, ओम ह्रीं श्रीविलीं रसौं हृदयाम नमः। ओम् देवतायै नमः हृदि। दूसरा दृश्य-शिवानन्द देवी दुर्गा की मूर्ति के सामने आरती कर रहे हैं। तीसरा दृश्य- चन्दरा अपनी पत्नी सीता को मार रहा है। चौथा दृश्य- प्रसादी गा रहा है।)'[1] रासलीला की भांति 'टेव्लो' या झांकी-दृश्यों की अनेक सम्भावनाएं 'कलंकी' नाटक में दिखायी देती है। 'मादा कैक्टस' में मंच के अन्धकार के मध्य सुधीर के अतिरिक्त अन्य सभी चरित्रों का स्थिर झांकी वत् खड़े रह जाना ऐसा ही प्रयोग है लाल के लीला नाटकों में लोक नाटकों की अनेक रूढ़ियां सहज रूप में व्यक्त होती देखने में आती हैं। अभिनय में डूबने के साथ-साथ अभिनय से मुक्त और अनौपचारिक अभिनय की लोक नाटकों की शैली इन नाटकों में आत्मसात हुई प्रतीत होती है। हरिश्चन्द्र का नाटक करते-करते अचानक लौकाअपने चरित्र से हटकर स्वयं में एक नये चरित्र की सृष्टि कर लेता है और 'तक' हरिश्चन्द्र का सम्वाद' ही बदल जाता है- 'सुनो हरिश्चन्द्र का सम्वाद। ना मैं अमर हूं, ना ही मैं स्वर्ग गया। जीवन भर नरक की आग में जलकर दी अपने चरित्र की परीक्षा। तुम कहते हो मैं सफल हो गया।सत की परीक्षा में 'पर मुझे कल फिर परीक्षा देनी होगी अपने सत की। और आज का परीक्षाफल कल नहीं आयेगा काम। इसलिये मुझे यहीं रहना होगा-कल की परीक्षा के लिये।'[2] 'राम की लड़ाई'' में नाटक के चरित्रों में अभिनय-अनौपचारिकता स्थान-स्थान पर नाटक की गति को भंग करती है- दूसरे दृश्य में

1- गंगामाटी- पृ0 3

3- एक सत्य हरिश्चन्द्र- पृ0 76-77

गपोले रामलीला में परशुराम का 'पार्ट' करते-करते अचानक अपना गपोले वाला रूप प्रकट कर देता है- 'वेगि देखाऊ, मूढ़ नत आजू, उलटौं महि जहं लगि तव राजू । हा-हा-हा-, चण्ड कर चण्ड कर दूं, पर्वत को भी खण्ड-खण्ड कर दूं ।- कहाँ है गड़बड़ सिंह ? मेरे जीते जी कोई दूसरा कैसे कर सकता है परसुराम का पार्ट ? मारूं वह फापड़ कि फेल हो जाय हार्ट ।[1] तुकान्त सम्वादों के प्रयोगों के मूल में भी नौटंकी आदि नाट्य रूपों का प्रभाव देखने में आता है । इन लोक नाटकों में रंगा 'नामक पात्र सम्पूर्ण नाटक (जिसे खेल कहा जाता है) की चाल और सुर को बांधने का कार्य करता है, मंच पर पात्रों के प्रवेश और प्रस्थान की सूचना देता है गीतों और पद्यात्मक संवादों का प्रयोग भी करता है । लाल ने अपने नाटकों में इसका प्रयोग ~~अनेक~~ अनेक नामों से किया है- 'मादा कैक्टस' में वह 'सुधीर' के रूप में समदा आता है, 'सब रंग मोह-भंग' और 'गंगा माटी' में वह 'पुरुष' के नाम से और 'नरसिंह कथा' में जय-विजय के रूप में सामने आता है । कहीं-कहीं इस सूत्रधार का स्थानापन्न या सहायक मसखरा या विदूषक है जो नाटक निहित व्यंग्य को प्रकट करता है । 'सगुन पंछी' के पंछी सम्वेत गान गाते हुए कथा को आगे बढ़ाने का कार्य करते हैं, चरित्रों के बीच खड़े होकर गाते और इस प्रकार नाटक के चरित्रों को निभाने वाले अभिनेताओं को विश्राम का अवसर प्रदान करते हैं । इन्हें देखकर सहज ही बंगाल की जात्राओं के कथाकार का स्मरण हो आता है । 'सगुन पंछी' में पंछियों का दृश्य बन जाना एक प्रसिद्ध लोक नाट्य रूढ़ि है । साथ ही यह नाटक मुखौटों के प्रयोगों की सम्भावनाएं भी उजागर करता है । जात्रा नाटकों में एक विशेष प्रकार का नृत्य जिसे 'जुआंग-नाच' कहा जाता है- में पशु-पक्षियों के स्वांग किये जाते हैं । 'सगुन पंछी' में इन सम्भावनाओं को प्रयुक्त करने के व्यापक अवसर हैं ।

लाल के रंगमंच को उसकी त्रिआयामीयता से जोड़ने का कार्य किया है । उनके नाटकों में हम एक साथ निर्देशक के लिये सम्भावनाओं का व्यापक क्षेत्र देख

1- राम की लड़ाई- पृ0 29

सकते हैं और दर्शकों की रुचि (जिसे ऊपर आभिजात्य और लोक रुचि के रूप में देखा गया है) भी उनके नाटकों में संश्लिष्ट रूप में होती देखी जा सकती है। लेकिन इन रंग-कर्मियों के क्षेत्र को अपने नाटकों में एक प्रशस्त क्षेत्र प्रदान करने के उपरान्त वे नाटककार की महत्वपूर्ण भूमिका के विषय में आश्वस्त हैं। फलत: रचना के धरातल और नाटक के विचार तत्व के क्षेत्र में अन्य किसी (विशेष कर निर्देशक) के हस्तक्षेप के पक्ष में नहीं हैं। नाटक में निहित विचार अथवा अवधारणा एक ऐसा तत्व है जिसकी मौलिकता को निर्देशक या अभिनेता कोई भी चुनौती दे सकता। अवश्य ही, उसकी व्याख्या निर्देशक अपने ढंग से करने का अधिकारी है जैसा कि श्री इब्राहिम अल्काजी (सूर्यमुख), वंशीकौल(करफ्यू), एस० के रैणा(एक सत्य हरिश्चन्द्र) व व्यक्तिगत नान-ग्रुप (यक्ष प्रश्न), वीरेन्द्र नारायण (मिस्टर अभिमन्यु) ने अपनी प्रस्तुतियों में किया। लाल की नाट्य-प्रस्तुतियां निहित चिन्तन की 'बोल्डनेस' के कारण कहीं-कहीं वर्तमान समाज और राजनीति के सम्बंध में तीक्ष्ण व्यंग्य करने लगती हैं जिसका परिणाम अनेक बार निर्देशकों को भुगतना पड़ा है। आपातकाल में खेले गये नाटकों को तंत्र की जिस वक्र-दृष्टि का सामना करना पड़ा, उससे लाल के कतिपय नाटकों की 'बोल्डनेस' और उसके प्रस्तुतीगत सब खतरों को समझा जा सकता है।

रंगमंच को उसका दायित्व बोध करने के लिये लाल ने उसे सीधे वर्तमान से जोड़ा है। इसे वे वर्तमान सन्दर्भ कहकर पुकारते हैं और इसके अभाव की बात भी करते हैं- 'मेरे समय में लोग रंगमंच के स्वतंत्र अस्तित्व का उपयोग दो रूपों में कर रहे हैं- पहला ऐतिहासिक सन्दर्भों में, दूसरा अति आधुनिक रूप में, अर्थात् सम-सामयिक। अथवा, वर्तमान सन्दर्भ उनमें गायन है। इसका व्यावसायिक लाभ चाहे जितना हो, इससे रंगमंच का लाभ नहीं है।'[1] आज के जीवन को केवल आधुनिकता बोध के फैशन से ग्रस्त होकर ग्रहण करने का कोई अर्थ नहीं है। जिस प्रकार काफ्का, कामू, सन्त्रू सार्त्र और आयनेस्को ने जीवन के संताप और मानसिक संघर्ष को स्वयं भोगा

1- 'लाल से साक्षात्कार'

गया है। उसकी उपलब्धियां या अभाव हमारे मानस पर हमेशा वर्तमान रहते हैं। वे सामान्यीकृत होकर रचना में प्रकट होते हैं। फलत: वे जीवन में उपादेय और प्रेरणा के वाहक सिद्ध होते हैं। लाल ने मानस के ऐसे सदैव वर्तमान जीवनानुभवों को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। तभी वे विशेष नाट्य-शैलियों के प्रयोग मात्र न रहकर उनके माध्यम से नाटकों को वर्तमान जीवन सन्दर्भों से जोड़ने वाले बन जाते हैं।यही वर्तमान रंगमंच की वास्तविक देन है। 'देखना', 'अनुभव करना', 'भोगना' और 'प्रस्तुत करना' - ये सब उनकी रचनाओं में वर्तमान से जुड़ने की प्रक्रियाएं हैं।

वर्तमान से जुड़ने की उक्त प्रक्रिया उनके नाटकों में कथानक - भेद के साथ प्रकट होती रही है। ऐसे में उनका नाट्य-साहित्य कभी-कभी 'टाइप्ड' हो जाने का भ्रम देने लगता है। एक ही विचार या दर्शन को जब एक जैसी तत्व चिन्तन वाली शब्दावली में प्रकट किया जाता है तो उनके नाटक वैचारिक-गूढ़ता के कारण दर्शक और पाठक के लिये कठिन हो जाते हैं। कहीं-कहीं तो (यथा 'गुरु' नाटक)यह विचार-दर्शन ही कथानक पर हावी हो जाता है। नाटक का दर्शक अथवा पाठक कथा भी चाहता है - ऐसी कथा जो उसे मानसिक तनाव से मुक्त कर उसकी मनोरंजन प्रदान करे। व्यावसायिक सफलता की इस एक बड़ी शर्त पर लाल के उक्त नाटक प्रश्न चिन्ह लगाते हैं। उनके नाटकों में निहित चिन्तन एवं भाषा की सांश्लिष्टता और सहज समझ आ जाने की शक्ति का अभाव व्यावसायिक सफलता की दृष्टि से ऐसी सीमाएं हैं जिनके सम्बंध में विचार करना लाल जैसे समर्थ नाटककार के लिये नितान्त आवश्यक है। एक अन्य प्रश्न यह भी उठता है कि लाल के नाटकों का 'ठेठ गांव का ठाठ' दिल्ली के रंगमंच पर जिसके दर्शकों का अधिकांश मेट्रोपालिटन संस्कृति में रचा-बसा नागरिक है- किस सीमा तक ग्राह्य हो सकता है? दर्शकों को नाटकों में निहित ग्रामीण-परिवेश के साथ जोड़ने के लिये लोक-नाटकों के शिल्प को ग्रहण कर लेना मात्र पर्याप्त नहीं है, इसके लिये प्रेक्षकों के मानस को तैयार करना आवश्यक है - यह कार्य परम्पराओं से जुड़े नाटककार लाल का ही कार्य नहीं प्रत्युत इसके लिये आधुनिक हिन्दी नाटककारों में लोक-चेतना की जागृति आवश्यक है।

--